© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

शांखायन ब्राह्मण में प्राणविद्या का स्वरूप

डॉ० निधि वेदरत्न
प्रशिक्षित स्नातक संस्कृत शिक्षिका
शिक्षा-निदेशालय, दिल्ली सरकार, भारत।

सारांश – प्राण के सम्बन्ध में मानव सर्वदा जागरूक रहा है। प्राणविद्या रहस्यात्मक है। प्राण और आत्मा में क्या समन्बन्ध है? जन्म और मृत्यु का प्राण से क्या सम्बन्ध है? इसप्रकार के प्रश्नों का उत्तर शरीर–विज्ञान और शास्त्रों के सन्दर्भ में चर्चा की गई है। मुख्य रूप से श्वासोच्छ्वास (वायु) का प्राण से साक्षात् सम्बन्ध है। शास्त्र और विज्ञान दोनों ही इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

प्रमुख शब्द – प्राण, श्वास, वायु, Alimentary System, Respiratory System, Digestive System, अमृत, मृत्यु

प्राणों के सन्दर्भ में सामान्यत: विचार करने पर प्राण शब्द से हमारा ध्यान श्वास – प्रश्वास की सामान्य गति की ओर जाता है। श्वास का नासिका पुटों में गमनागमन प्राण है परन्तु यह प्राण क्या है? कहां से उत्पन्न होता है? कहा निवास करता है? इसका स्वरुप क्या है? आदि[1] से सम्बन्धित जिज्ञासाओं परचिन्तन करना ही इस प्रपत्र में प्राणविद्याका प्रतिपाद्य विषय है। शांखायन ब्राह्मण में अनेकत्र प्राण का उल्लेख **"यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे"** की अवधारणा को चरितार्थ करते हुए पिण्ड में व्याप्त प्राण की समानता ब्रह्माण्ड में हो रहे महान् याग के साथ प्रदर्शित की गई है। प्राण को परिभाषित करते हुए महर्षि यास्क लिखते हैं– **अपि वा असुरिति प्राण नाम। अस्त: शरीरे भवति असु** यह प्राणवाची शब्द है क्योंकि वह प्राण शरीर में अस्त क्षिप्त रहता है।

प्राण का स्वरूप -प्राण क्या है इसको बताते हुए प्रकृत ब्राह्मण ग्रन्थ में कहा गया– "प्राण आत्मा के साथ लगी हुई छाया है जिसका अस्तित्व बिना आत्मा के अस्वीकार्य है। शांखायन ब्राह्मण के शब्दों में इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है–

स्तोत्रियानुरूपौ प्राणा वालखिल्या अनन्तर्हिता उ हेमे प्राणास्तदाहुः-कस्माद्वालखिल्याः इति यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिलमिति वै तदाचक्षते वालमात्रा उ हेमे प्राणा अंसभिन्नाः[2]।

ये प्राण आत्मा से पृथक नहीं है। वालमात्राः=ये प्राण केशमात्र है और असंभिन्न है। प्राण की उत्पत्ति के विषय में प्रश्नोपनिषद् में एक प्रसंग आता है जहाँ अश्वल ऋषि के पुत्र कौशल्य पिप्पलाद ऋषि से पूछते हैं कि यह प्राण जो सब जगत् के पदार्थों को धारण कर रहा है, स्वयं कहाँ से उत्पन्न होता है? ऋषि इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि प्राण आत्मा से अलग नहीं रहता–

आत्मनः एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे हायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरै[3]॥

आत्मा से यह प्राण उत्पन्न होता है। जैसे पुरुष के साथ छाया लगी है।, इसी प्रकार आत्मा के साथ प्राण लगा है। पुरूष से छाया की उत्पत्ति है। आत्मा से प्राण की उत्पत्ति है। आत्मा के शरीर में प्रवेश करते ही प्राण गतिशील हो जाता है।

प्राणतिः वायुः[3] के अनुसार चूंकि प्राण एक वायु का प्रकार है अतएव वायु के अदृश्य स्वरूप वाला होने से प्राणवायु भी स्वरूप शून्य है। उपनिषद् में प्राण को वाण शब्द से अभिव्यक्त किया गया है वा का अर्थ है– 'शायद'। इस जड़–चेतन जगत् को कोई इस प्रकार धारण करता है जैसे छप्पर को नीचे गिरने से एक वल्ली रोके रहती है वैसे ही प्राण इस शरीर को वल्ली के समान धारण करके रखता है। वेदवाणी इस सन्दर्भ में सुन्दर प्रकाश डालते हुए कहते है –

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।

समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः॥[4]

असुरस्य = प्राणदस्य परमेश्वरस्य मायया = प्रज्ञानेन अक्तम् = अञ्जित पतङ्गम् = प्राणरूपी पक्षी को हृदा मनसा = हृदयस्थ इच्छा से और मन से विपश्चितः = विशिष्ट विद्वान जन जानते हैं। कवयः वेधसः = मेधावी

अध्यात्मकर्म के विधाता योगीजन मरीचीनां पदम् = रश्मियों पर सूर्य की भांति जीवनशक्तियों या चित्तवृत्तियों के ऊपरविराजमान प्रापणीय जीवात्मा को इच्छन्ति = चाहते है खोजते हैं। समुद्रे अन्त: = विश्व के समुद्ररूप परमात्मा के अन्दर अपने आत्मा को विचक्षते = अनुभव करते है।

पतङ्गो वाचं मनसा विभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्त:।

तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति[5]॥

पतङ्गम्= जीवात्मा वाचम्= वाणी को मनसा = मनन वृत्ति से बिभर्त्ति= धारण करता है। ताम्= उस वाणी को गन्धर्व:= प्राणवायु गर्भे अन्त:= अपने अन्दर अवदत्= बोलता है। तां द्योतमानां = उस प्रकट होती हुई को मनीषाम्= मनोगत को कवय:= मेधावी जन ऋतस्य पदे स्वयम्= ज्ञान के स्वर वाले प्राप्तव्य पद पर निपान्ति= नियत रखते हैं। अर्थात् –जीवात्मा अपनी मनन् शक्ति से वाणी को धारण करता है, ध्यान में लाता है। पुन: प्राणवायु उसका अन्दर से उत्थान करता है, जब यह बाहर प्रकट होती है तो मेधावी जन ज्ञान के स्वर वाले पद पर उसे सुरक्षित रखते है। अर्थात् ज्ञान के उपयोग में लाते है। यहां पर स्पष्ट रूप में वाणी को प्रकट होने में प्राण की महत्ता को दर्शा या है। प्राण जब मूलधार से वायु को ऊपर की ओर फेंकता है। वही प्राणवायु जबकण्ठ्य–कूपादि से टकराते हुए मूर्धा कण्ठ और तालु आदि स्थानोंको स्पर्श करती है तब शब्द उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्राणवायु नासिका के साथ–साथ वागेन्द्रिय को संचालित करने में अपना महत्त्वपूर्ण किरदार निभाता है।

यह प्राण इस शरीर में विभक्त होकर रहता है इसके अनेक रूप एवं भिन्न–भिन्न कार्य है? चूंकि एक प्राण सभी कार्यों को अकेले सम्पादित नहीं कर सकता है, जिस प्रकार एक राजा समस्त शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये कार्यों को अपने अधीनस्थ मन्त्रिगणों में बांट देता है उसी प्रकार प्राण अन्य प्राणों को अपने–अपने कामों में विनियुक्त करता है–

यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठस्येवमेवैष प्राण इतरान्प्राणान्पृथक्पृथगेव सन्निधत्ते[6]।

प्राण किस प्राणवायु को किस कार्य में विनियुक्त करता है इसका वर्णन अगली ऋचा में वर्णित है–

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तर्चिषो भवन्ति।

पायु एवं उपस्थ में अपानवायु की स्थिति है जिसे आधुनिक विज्ञान में Alimentary System कहा जाता है। आँख कान नासिका और मुख से स्वयं प्राण का प्रकटन होता है, जिसे Respiratory System कहा जाता है। शरीर के मध्यभाग में समान नामक प्राणवायु प्रतिष्ठित होता है। समान वायु के द्वारा ही आहुति के रूप में पड़ा हुआ अन्न समान करके शरीर को रस के रूप में पहुँचाता है। इसे ही आधुनिक भाषा में Digestive System के रूप में व्यक्त किया जाता है। प्रसंगानुसार इनका उल्लेख शांखायन ब्राह्मण में अनेकत्र देखा जा सकता है। तद्यथा–

अपश्यं गोपार्मानपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥

पथिभिः = रश्मि मार्गों से नासिका–पथों से आचरन्तं च = शरीर में आते हुए तथा परा च = शरीर से जाते हुए गोपाम्= इन्द्रियों के अधिष्ठाता प्राणवायु को अपश्यम्= मैं जानता हूँ।

वायु प्राण है और वह इन तीन मत्रों से वायु के लिये स्वाहाकार करता है।

प्रस्तुत प्रसंग में प्राण एव अपान की चर्चा की जा रही है। इसे अन्य प्रमाणों के माध्यम से भी समझा जा सकता है, तद्यथा–

अग्निर्वै देवानामवरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यस्तद्यश्चैव देवानामवरार्ध्यो तत्सर्वाः देवताः परिगृह्य सलोकतामाप्नोति) तस्मात्कामं पूर्वो दीक्षित्वा संसनुयात्पूर्वस्य ह्यस्य देवताः परिगृहीता भवन्ति शरीराभिः प्राणदीक्षाभिर्दीक्षते प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजा।

प्रयाज और अनुयाज से चलना मानो प्राण और अपान को दीक्षित करते हुए निःश्रेयस के मार्ग पर गमन। जबकि हविष् का अनुकरण करते हुए शरीर को दीक्षित करना, सभी कामनाओं को प्राप्त करना, अभ्युदय की प्राप्ति,

सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है जबकि दीक्षित प्राण और अपान से लोकों की सलोकता के साथ सभी देवताओं का सायुज्य प्राप्त करता है।

अन्यत्र भी कहा है –

प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजास्तस्मात्समा भवन्ति समाना हीमे प्राणापानास्तदाहुः कस्मात्[7]?

प्राण प्रयाज है अपान अनुयाज है इससे ये दोनों समान होते हैं। क्योंकि प्राण अपान समान= बराबर है। प्राण सूर्य के समान ऊर्ध्व में विराजमान है जबकि अपान पृथिवी के समान ध्रुव अधोस्थान में विराजमान है किन्तु पृथिवी एवं द्यौ के समान दोनों का महत्व समान है। दोनों की समानता के उपरान्त भी प्राण अमृत है। ऋचा के शब्दों में –

अमृतं वै प्राणः अमृतेन तन्मृत्युं तरति तद्यथा वशेन वा मर्त्येन वा गर्त्तं संक्रामेदेवं तत्प्रणवेन संक्रामति ब्रह्म वै प्रणवो ब्रह्मणैव तदब्रह्मोपसंतनोति[8]॥

प्राण अमृत है वह अमृतत्व से मृत्यु को पार करता है। जैसे कोई बांस या किसी मिट्टी की दीवार से गड्ढे को पार करता है। इसी प्रकार प्राण के सहारे प्रणव से वह इस लोक को पार करता है चूकि प्रणव ब्रह्म (दैवीशक्ति) है। प्रणव की साधना के लिये प्रथम प्राण की साधना= सिद्धि आवश्यकहै। अतएव आगे इसी प्रकरण में प्राणों की रक्षार्थ प्रार्थना की गई है।–

प्राणं मे पाहि प्राणं मे जिन्वः स्वाहा त्वा[9]. . . . . .।

हे प्रभु! मेरे प्राणों की रक्षा करो। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सूर्य ओंकार का यजन कर रहा है। उसी प्रकार पिण्ड में प्राण ओंकार का गान कर रहा है। इसीलिये प्रस्तुत ग्रथं में प्राणों का सूर्य के साथ तारतम्य बताते हुए एक आहुति सूर्य के उदित होने के पश्चात् जबकि दूसरी सूर्यके उदित होने से पूर्व देने का विधान किया गया है। इस प्रकार प्राण तथाअपान दोनों साथ होने के बाद भीपृथक् है।

तौ वा एतौ प्राणापानावेव यदुपांश्वन्तर्यामौ तयोर्वा उदितेऽन्यमनुदितेऽन्यं जुह्वतीमावेव तत्प्राणापानौ वितारयति[10]।

अब उसी प्राण के अनेक रूपों का वर्णन करते हैं। ऋचा इस प्रकार है–

स वा अयं त्रेधा विहितः प्राण : प्राणोऽपानो व्यान इति षड् ऋतुनेति यजन्ति प्राणमेवतद्यजमाने दधति चत्वार ऋतुभिः द्विर्ऋतुनेत्युपरिष्टाद् व्यानमेव तद्यजमाने दधति[11]।

वही प्राण तीन स्वरूपों में प्राण अपान तथा व्यान के रूप में जाना है। आत्मा और प्राण की तारतम्यता बनाये रखने के लिये अपान को मन से संयुक्त करता है. वह प्राण में अपान को रखता है. वह व्यान को प्राण में रखता है। प्राण की स्थिति ऊर्ध्व भाग में श्वासों की अविरत गति के रूप में जानी जाती है। शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर प्राणों की अवस्थिति शिर प्रदेश में है–

एतद्वै शिरः समृद्धं यस्मिन्प्राणो वाक्चक्षुः श्रोत्रमिति।

प्रायणीयेन वै देवाः प्राणमाप्नुवन्नुदपनोयेनोदानं तथो एवैतद्यजमानः[12]।

यह प्रदेश कुछ विद्वान् मध्यमस्थानी हृदयप्रदेश में मानते हैं।प्रायणीय यज्ञ से देवों ने प्राण को प्राप्त किया तथा उदयनीय यज्ञ से उदान को, इसी प्रकार निश्चय ही यजमान प्रायणीय से प्राण तथा उदनीय से उदान कोप्राप्त करता है। उदान वायु का कार्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है जैसा कि इस शब्द से स्पष्ट है उद+आन = ऊपर या नीचे की ओर चलना उदान कहलाता है। हृदय से एक नाड़ी ऊर्ध्व देश को अर्थात् मस्तिष्क की ओर जाती है, अतः सामान्यतः प्राणों की ऊपर की ओर गति ही उदान वायु का कार्य है।

व्यान वायु हृदय से रक्त लेकर सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहमान करती है, इसे रक्तसंचारिणी अथवा आधुनिक भाषा मेंके नाम से जाना जाता है। हृदय प्रदेश में 101 नाड़ियां हैं जिनमें से प्रत्येक में से 100–100 शाखाएं फूटी हैं, उन शाखाओं में भी अलग–अलग प्रत्येक से 72000 प्रतिशाखाएं प्रस्फुटित हुई। इन सबको गतिमान् रखने का कार्यभार व्यान वायु निर्वहन करती है। समान का कार्य श्वास–निःश्वास रूपी गति से सम्पूर्ण शरीर को गतिशील रखना है। प्राण को शरीर में मध्यमस्थानी स्वीकार किया गया है। प्राण की मध्यमस्थानिता को निरुक्त में भी अभिव्यक्त किया गया है। मध्यमस्थानी देवताओं के वर्णन प्रसंग में महर्षि यास्क ने लिखा–

बुध्नमन्तरिक्षम् बद्धा अस्मिन् धृता आप इति वा। इदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेव। बद्धा अस्मिन् धृताः प्राणा इति[13]।

बुध्न अंतरिक्ष को कहते हैं क्योंकि इसमें जल बंधे रहते हैं धृता: आप: = या धरे रहते हैं। यह शरीरवाचक बुध्न इसी से कहलाता है। इस शरीर में प्राण धरे हुए हैं, जिस प्रकार समस्त अन्तरिक्ष में जल व्याप्त हैं वैसे ही समस्त शरीर में भिन्न-भिन्न रूपों में प्राण व्याप्त हैं। प्राण स्वयं मध्यमस्थानी है वह प्राण सुपर्ण है। ऋग्वेद की ऋचा कहती है-

एक: सुपर्णो स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।

तं पाकेन मनसाऽपश्यमन्तितस्तं माता रेड्ढि स उ रेड्ढि मातरम्॥[14]

एक सुपर्ण नामक प्राण है वह हृदय-अन्तरिक्ष में प्रविष्ट है. उसको कभी वाणी ग्रहण करती है कभी वह वाणी को ग्रहण करता है।

शांखायन ब्राह्मण में प्राण का निवास स्थान बताते हुए कहा- **प्राणो मे प्राणेन दीक्षितां स्वाहेति तृतीयां मध्ये प्राणमाह मध्ये ह्यं प्राण:**[1]**।** मेरा प्राण प्राण से दीक्षित हो प्राण को वह मध्य में कहता है क्योंकि यह प्राण मध्य में है। इत्यादि उदाहरणों के माध्यम से मध्यमस्थानी स्वीकारा गया है।

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान के अतिरिक्त प्राणवायु के प्रकार संक्षेप में यहां वर्णित है-

नाग प्राणवायु को मुख से हृदय तक स्वीकारा गया है, इसका कार्य डकार एवं हिचकी लाना है ये क्रियाएं भी अपने आप में महत्वपूर्ण है इनकी अधिकता भी जीवन निवृत्ति का कारण बन सकती है।

कूर्म प्राणवायु को पलकों को गतिशील बनाने के लिये माना जाता है। इनका विशद रहस्य अभी भी शोध योग्य है।

कृकलवायु कण्ठस्थानीय जलतत्त्व प्रधान है। इसका कार्य क्षुधा,तृषा का उत्पादन करना है तथा जृम्भा-जंभाई लाना है।

देवदत्त वायु नासिकास्थानीय है,यह छींक लेने में भूमिका निभाता है।

धनञ्जय वायु समस्त शरीर में व्याप्त है इसका कार्य मरण पश्चात् एवं जीवनकाल में शोथ उत्पन्न करना है।

इस प्रकार यह दश प्रकार वाला प्राण है, जैसा कौषीतकि में स्पष्ट किया गया है-

दशर्चं भवति दशेमे प्राणाः, प्राणानेव तद्यज्ञे च यजमानेषु च दधाति।[15]

यह दश ऋचाओं का है। ये प्राण दश हैं इस प्रकार वह यज्ञ तथा यजमानों में इन प्राणों को स्थापित करता है।

इस प्रकार प्राणविद्या के अन्तर्गत 10 प्रकार के वायु एवं 11वां जीवात्मा का ग्रहण होता है। प्राण है तो शरीर में ऊष्मा है, धमनियों में रक्त का स्पन्दन है प्राण निकल गया तो शरीर ठण्डा पड़ जाता है, हाथ–पैर निष्चेष्ट हो जाते हैं, व्यक्ति कहता है– सारा शरीर ठण्डा पड़ गया अब कुछ नहीं हो सकता अर्थात् प्राण है तो शरीर में अग्नि तत्व भी है, मृत्यु पश्चात् यही 11 रुद्र रोदन कराने वाले होते हैं। कौषीतकि ब्राह्मण के सन्दर्भ में यद्यपि ये प्राण विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होते हैं पर पृथक् नहीं होते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. कौ.ब्रा
2. प्रश्नो.
3. दशपाद्युणादि.
4. ऋ.सं.10.177.1
5. ऋ.सं.10.177.2
6. प्रश्नो.3.5
7. कौशी.10.3
8. शां. 11.4
9. 12.4
10. 12.4
11. कौशी. 7.5
12. निरु. दैवतकाण्ड 10.29
13. ऋ.10114.4
14. कौशी.7.4